स्वामी विवेकानंद

प्रौढ़ शिक्षा माला

प्रेमचंद

स्वामी विवेकानंद

प्रेमचंद

सरस्वती प्रेस

दिल्ली □ इलाहाबाद

© सरस्वती प्रेस

संस्करण : १६८०

प्रकाशक : सरस्वती प्रेस
२/४३, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-११०००२
५, सरदार पटेल मार्ग, इलाहाबाद

मुद्रक :—राज प्रिंटिंग कम्पनी नई दिल्ली-110020

मूल्य : तीन रुपये

स्वामी विवेकानंद

प्रेमचंद

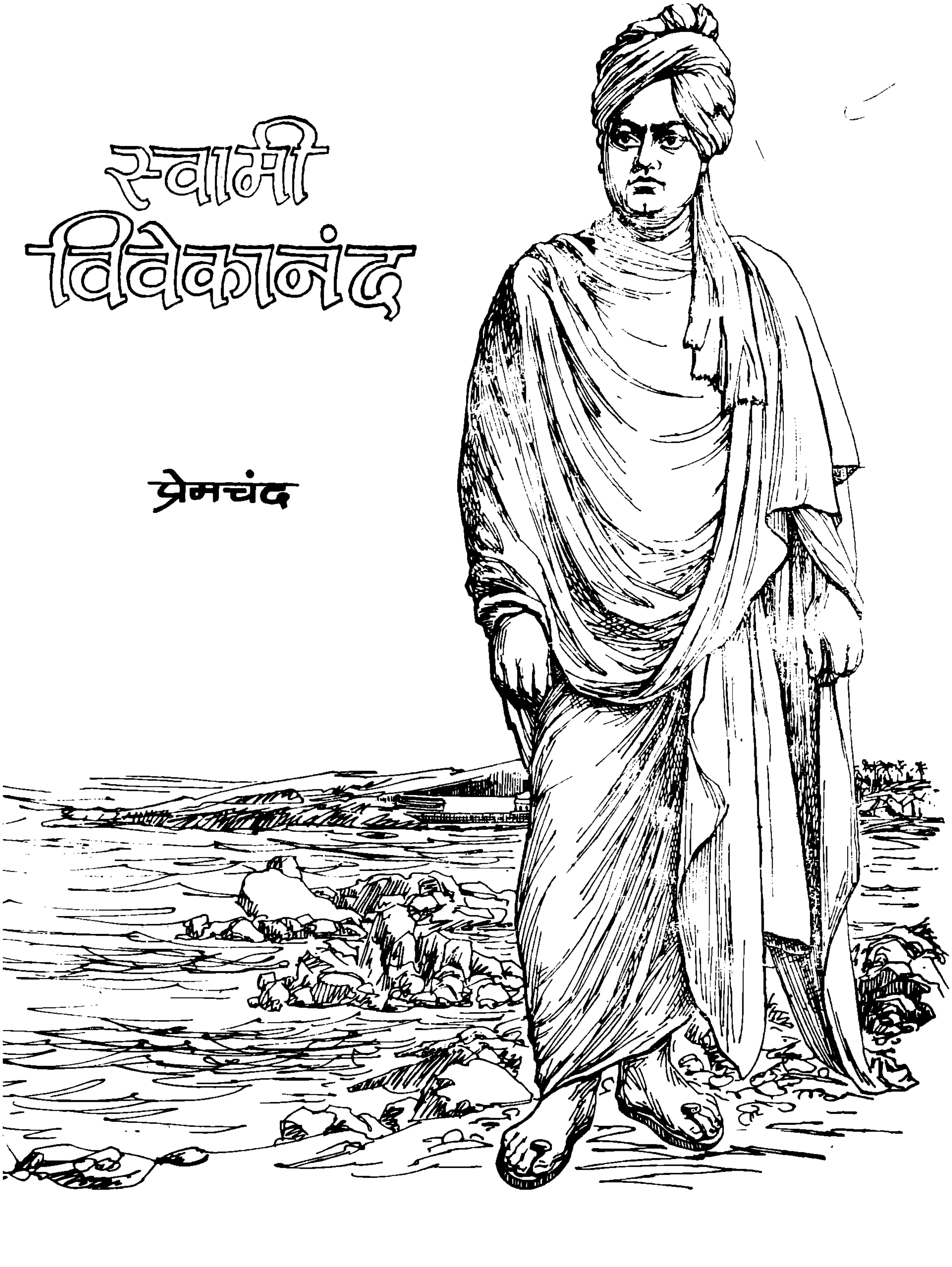

स्वामी विवेकानंद

कृष्ण भगवान् ने गीता में कहा है कि जब-जब धर्म का ह्रास और पाप की प्रबलता होती है तब-तब मैं मानव जाति के कल्याण के लिए अवतार लिया करता हूँ। इस नाशवान् जगत् में सर्वत्र सामान्यत: और भारतवर्ष में विशेषत: जब कभी पाप की वृद्धि या और किसी कारण (समाज के) संस्कार या नव-निर्माण की आवश्यकता हुई तो ऐसे सच्चे सुधारक और पथ-प्रदर्शक प्रकट हुए हैं, जिनके आत्मबल ने सामयिक परिस्थिति पर विजय प्राप्त की। पुरातन काल में जब पाप-अनाचार प्रबल हो उठे तो कृष्ण भगवान् आये और अनीति-अत्याचार की आग बुझायी। इसके बहुत दिन बाद जब क्रूरता, विलासिता और स्वार्थपरता का फिर दौरदौरा हुआ तो बुद्ध भगवान् ने जन्म लिया और उनके उपदेशों ने धर्मभाव की ऐसी धारा बहा दी जिसने कई सौ साल तक जड़वाद को सिर न उठाने दिया। पर जब काल-प्रवाह ने इस उच्च आध्यात्मिक शिक्षा की नींव को भी खोखली कर दिया और उसकी आड़ में दंभ-दुराचार ने फिर

जोर पकड़ा तो शंकर स्वामी ने अवतार लिया और अपनी वाग्मिता तथा योग-बल से धर्म के परदे में होने वाली बुराइयों की जड़ उखाड़ दी। अनन्तर कबीर साहब और श्री चैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए और अपनी आत्मसाधना का सिक्का लोगों के दिलों पर जमा गये।

ईसा की पिछली शताब्दी के प्रारंभ में जड़वाद ने फिर सिर उठाया, और इस बार उसका आक्रमण ऐसा प्रबल था, अस्त्र ऐसे अमोघ और सहायक ऐसे प्रबल थे कि भारत के आत्मवाद को उसके सामने सिर झुका देना पड़ा। और कुछ ही दिनों में हिमालय से लगा कर राजकुमारी तथा अटक से कटक तक उसकी पताका फहराने लगी। हमारी आँखें इस भौतिक प्रकाश के सामने चौंधिया गयीं, और हमने अपने प्राचीन तत्त्वज्ञान, प्राचीन शास्त्र-विज्ञान, प्राचीन समाज-व्यवस्था, प्राचीन धर्म और प्राचीन आदर्शों को त्यागना आरम्भ कर दिया। हमारे मन में दृढ़ धारणा हो गयी कि हम बहुत दिनों से मार्ग-भ्रष्ट हो रहे थे और आत्मा-परमात्मा की बातें निरी ढकोसला हैं। पुराने जमाने में भले ही उनसे कुछ लाभ हुआ हो, पर वर्तमान काल के लिए वह किसी प्रकार उपयुक्त नहीं और इस रास्ते से हट कर हमने नये राज-मार्ग को न पकड़ा तो कुछ ही दिनों में धरा धाम से लुप्त हो जायेंगे।

ऐसे समय पुनीत भारत-भूमि में पुनः एक महापुरुष का आविर्भाव हुआ जिसके हृदय में अध्यात्म भाव का सागर लहरा रहा था, जिसके बिचार ऊँचे और दृष्टि दूरगामिनी थी, जिसका हृदय मानव-प्रेम से ओत-प्रोत था; उसकी सच्चाई भरी ललकार ने क्षण भर में जड़वादी संसार में हलचल मचा दी। उसने नास्तिक्य के गढ़ में घुस कर साबित कर दिया कि तुम जिसे प्रकाश समझ रहे हो, वह वास्तव में अंधकार है, और यह सभ्यता जिस पर तुमको इतना गर्व है, सच्ची सभ्यता नहीं। इस सच्चे विश्वास के बल से भरे हुए भाषण ने भारत पर भी जादू का असर किया और जड़वाद के प्रखर प्रवाह ने अपने सामने ऐसी ऊँची दीवार खड़ी पायी, जिसकी जड़ को हिलाना या जिसके ऊपर से निकल जाना उसके लिए असाध्य कार्य था। आज अपनी समाज-व्यवस्था, अपने वेदशास्त्र, अपने

रीत व्यवहार और अपने धर्म को हम आदर की दृष्टि से देखते हैं। यह उसी पूतात्मा के उपदेशों का सुफल है कि हम अपने प्राचीन आदर्शों की पूजा करने को प्रस्तुत हैं, और यूरोप के वीर पुरुष और योद्धा, विद्वान और दार्शनिक हमें अपने पंडितों, मनीषियों के सामने निरे बच्चे मालूम होते हैं। आज हम किसी बात को, चाहे वह धर्म और समाज-व्यवस्था से सम्बन्ध रखती हो या ज्ञान-विज्ञान से, केवल इसलिए मान लेने को तैयार नहीं हैं कि यूरोप में उसका चलन है। किन्तु उसके लिए हम अपने धर्म-ग्रन्थों और पुरातन पूर्वजों का मत जानने का यत्न करते और उनके निर्णय को सर्वोपरि मानते हैं। और यह सब ब्रह्मलीन स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक उपदेशों का ही चमत्कार है।

स्वामी विवेकानन्द जी का जीवन वृत्तान्त बहुत संक्षिप्त है। दुःख है कि आप भरी जवानी में ही इस दुनिया से उठ गये और आपके महान् व्यक्तित्व से देश और जाति को जितना लाभ पहुँच सकता था, न पहुँच सका। १८६३ ई० में वह एक प्रतिष्ठित कामराय कुल में उत्पन्न हुए। बचपन से ही होनहार दिखाई देते थे। अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा पायी और १८८४ ई० में बी० ए० की डिग्री हासिल की। उस समय उनका नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। कुछ दिनों तक ब्राह्म-समाज के अनुयायी रहे। नित्य प्रार्थना में सम्मिलित होते और चूँकि गला बहुत ही अच्छा पाया था, इसलिए कीर्तन समाज में भी शरीक हुआ करते थे। पर ब्राह्म-समाज के सिद्धांत उनकी प्यास न बुझा सके। धर्म उनके लिए केवल किसी पुस्तक से दो-चार श्लोक पढ़ देने, कुछ विधि-विधानों का पालन कर देने और गीत गाने का नाम नहीं हो सकता था। कुछ दिनों तक सत्य की खोज में इधर-उधर भटकते रहे। उन दिनों स्वामी रामकृष्ण परमहंस के प्रति लोगों को बड़ी श्रद्धा थी। नवयुवक नरेन्द्रनाथ ने भी उनके सत्संग से लाभ उठाना आरम्भ किया और धीरे-धीरे उनके उपदेशों से इतने प्रभावित हुए कि उनकी भक्त मंडली में सम्मिलित हो गये और उस सच्चे गुरु से आध्यात्म तत्त्व और वेदांतरहस्य स्वीकार कर अपनी जिज्ञासा तृप्त की। परमहंस जी के देहत्याग के बाद नरेन्द्र ने कोट-पतलून उतार फेंका और संन्यास ले लिया। उस समय से

आप विवेकानन्द नाम से प्रसिद्ध हुए। उनकी गुरुभक्ति गुरुपूजा की सीमा तक पहुँच गयी थी। जब कभी आप उनकी चर्चा करते हैं तो एक-एक शब्द से श्रद्धा और सम्मान टपकता है। 'मेरे गुरुदेव' के नाम से उन्होंने न्यूयार्क में एक विद्वत्तापूर्ण भाषण किया, जिसमें परमहंस जी के गुणों का गान बड़ी श्रद्धा और उत्साह के स्वर में किया गया है।

स्वामी विवेकानन्द ने गुरुदेव के प्रथम दर्शन का वर्णन इस प्रकार किया है—

'देखने में वह बिल्कुल साधारण आदमी मालूम होते थे। उनके रूप में कोई विशेषता न थी। बोली बहुत सरल और सीधी थी। मैंने मन में सोचा कि क्या यह सम्भव है कि यह सिद्ध पुरुष हों। मैं धीरे-धीरे उनके पास पहुँच गया और उनसे वह प्रश्न पूछे जो मैं अक्सर औरों से पूछा करता था।—"महाराज, क्या आप ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं?" उन्होंने जवाब दिया—"हाँ"। मैंने फिर पूछा—"क्या आप उसका अस्तित्व सिद्ध भी कर सकते हैं?" जवाब मिला—"हाँ"। मैंने पूछा—"क्योंकर?" जवाब मिला—"मैं उसे ठीक वैसे ही देखता हूँ जैसे तुमको।"

परमहंस जी की वाणी में कोई वैद्युतिक शक्ति थी जो संशयात्मा को तत्क्षण ठीक रास्ते पर लगा देती थी और यही प्रभाव स्वामी विवेकानन्द की वाणी और दृष्टि में भी था। हम कह चुके हैं कि परमहंस जी के परमधाम सिधारने के बाद स्वामी विवेकानन्द ने संन्यास ले लिया। उनकी माता उच्चाकांक्षिणी स्त्री थीं। उनकी इच्छा थी कि मेरा लड़का वकील हो, अच्छे घर में उसका ब्याह हो, और दुनिया के सुख भोगे। उनके संन्यास-धारण के निश्चय का समाचार पाया तो परमहंस जी की सेवा में उपस्थित हुईं और अनुनय-विनय की कि मेरे बेटे को जोग न दीजिए; पर जिस हृदय ने शाश्वत प्रेम और आत्मानुभूति के आनन्द का स्वाद पा लिया हो उसे लौकिक सुखभोग कब अपनी ओर खींच सकते हैं।

परमहंस जी कहा करते थे कि जो आदमी दूसरों को आध्यात्मिक उपदेश देने की अकांक्षा करे, उसे पहले स्वयं उस रंग में डूब जाना चाहिए। इस आदेश

के अनुसार स्वामी जी हिमालय पर चले गये और वहाँ पूरे नौ साल तक तपस्या और चित्त-शुद्धि की साधना में लगे रहे । बिना खाये, बिना सोये एकदम नग्न और एकदम अकेले सिद्ध महात्माओं की खोज में ढूँढ़ते और उनके सत्संग से लाभ उठाते रहते थे । कहते हैं कि परमतत्व की जिज्ञासा उन्हें तिब्बत खींच ले गयी, जहाँ उन्होंने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और साधन-प्रणाली का समीक्षक बुद्धि से अध्ययन किया । स्वामी जी खुद फरमाते हैं कि मुझे दो-दो तीन-तीन दिन तक खाना न मिलता था, अक्सर ऐसे स्थान पर नंगे बदन सोया हूँ जहाँ की सर्दी का अन्दाजा थर्मामीटर से भी नहीं लग सकता। कितनी ही बार शेर, बाघ और दूसरे शिकारी जानवरों का सामना हुआ । पर राम के प्यारे को इन बातों का क्या डर !

स्वामी विवेकानन्द हिमालय में थे जब उन्हें प्रेरणा हुई कि अब तुम्हें अपने गुरुदेव के आदेश का पालन करना चाहिए। अतः वह पहाड़ से उतरे और बंगाल, संयुक्तप्रांत, राजपूताना, बम्बई आदि में रेल से और अक्सर पैदल भी भ्रमण करते, किन्तु जो जिज्ञासु जन श्रद्धा-वश उनकी सेवा में उपस्थित होते थे उन्हें धर्म और नीति के तत्वों का उपदेश देते थे । जिसे विपद्ग्रस्त देखते उसको सांत्वना देते । मद्रास उस समय नास्तिकों और जड़वादियों का केन्द्र बन रहा था । अंग्रेजी विश्वविद्यालयों से निकले हुए नवयुवक जो अपने धर्म और समाज-व्यवस्था के ज्ञान से बिल्कुल कोरे थे, खुलेआम ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार किया करते थे । स्वामी जी यहाँ अरसे तक टिके रहे और कितने ही होनहार नौजवानों को धर्म-परिवर्तन से रोका तथा जड़वाद के जाल से बचाया। कितनी ही बार लोगों ने उनसे वादविवाद किया । उनकी खिल्ली उड़ायी, पर वह अपने वेदान्त के रंग में इतना डूबे हुए थे कि उन्हें किसी की हँसी-मजाक की तनिक भी परवाह न थी । धीरे-धीरे उनकी ख्याति नवयुवक-मंडली से बाहर निकल कर कस्तूरी की गंध की तरह चारों ओर फैलने लगी । बड़े-बड़े धनीमानी लोग भक्त और शिष्य बन गये और उनसे नीति तथा वेदान्त-तत्व के उपदेश लिये । जस्टिस सुब्रह्मण्यन् ऐयर, महाराजा रामानन्द (मद्रास) और महाराज खेतड़ी (राजपूताना) उनके प्रमुख शिष्यों में थे ।

स्वामी जी मद्रास में थे जब अमरीका में सर्व-धर्म-सम्मेलन के आयोजन का समाचार मिला। वह तुरन्त उसमें सम्मिलित होने को तैयार हो गये और उनसे बड़ा ज्ञानी तथा वक्ता और था ही कौन ? भक्त-मंडली की सहायता से आप इस पवित्र यात्रा पर रवाना हो गये। आपकी यात्रा अमरीका के इतिहास की एक अमर घटना है। यह पहला अवसर था कि कोई पश्चिमी जाति दूसरी जातियों के धर्म-विश्वासों की समीक्षा और स्वागत के लिए तैयार हुई हो। रास्ते में स्वामी जी ने चीन और जापान का भ्रमण किया और जापान के सामाजिक जीवन से बहुत प्रभावित हुए, वहाँ से एक पत्र में लिखते हैं—

'आओ, इन लोगों को देखो और जाकर शर्म से मुँह छिपा लो। आओ, मर्द बनो। अपने संकीर्ण बिलों से बाहर निकलो और जरा दुनिया की हवा खाओ।'

अमरीका पहुँचकर उन्हें मालूम हुआ कि अभी सम्मेलन होने में बहुत देर है। यह दिन उनके बड़े कष्ट में बीते। अकिंचनता की यह दशा थी कि पास में ओढ़ने-बिछाने तक को काफी न था। पर उनकी सन्तोष-वृत्ति इन सब कष्ट-कठिनाइयों पर विजयी हुई। अन्त में बड़ी प्रतीक्षा के बाद नियत तिथि आ पहुँची। दुनिया के विभिन्न धर्मों ने अपने-अपने प्रतिनिधि भेजे थे, और यूरोप के बड़े-बड़े पादरी और धर्म-शास्त्र के अध्यापक, आचार्य हजारों की संख्या में उपस्थित थे, ऐसे महासम्मेलन में एक अकिंचन असहाय नवयुवक का कौन पुछैया था, जिसकी देह पर साबित कपड़े भी न थे। पहले तो किसी ने उनकी ओर ध्यान ही न दिया, पर सभापति ने बड़ी उदारता के साथ उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, और वह समय आ गया कि स्वामी जी श्रीमुख से कुछ कहें। उस समय तक उन्होंने किसी सार्वजनिक सभा में भाषण न किया था। एकबारगी ८-१० हजार विद्वानों और समीक्षकों के सामने खड़े होकर भाषण करना कोई हँसी-खेल न था। मानव-स्वभाव-वश क्षण भर स्वामी जी को भी घबराहट रही, पर केवल एक बार तबियत पर जोर डालने की जरूरत थी। स्वामी जी ने ऐसी पाण्डित्य-पूर्ण, ओजस्वी और धारा-प्रवाह वक्तृता की कि श्रोतृमंडली मंत्र-मुग्ध-सी हो गयी। यह असभ्य हिन्दू, और ऐसा विद्वत्ता-पूर्ण

भाषण ! किसी को विश्वास न होता था। आज भी इस वक्तृता को पढ़ने से भावावेश की अवस्था हो जाती है। वक्तृता क्या है, भगवद्गीता और उपनिषदों के ज्ञान का निचोड़ है। पश्चिम वालों को आपने पहली बार सुझाया कि धर्म के विषय में निष्पक्ष उदार भाव रखना किसको कहते हैं। और धर्म वालों के विपरीत आपने किसी धर्म की निंदा न की और पश्चिम वालों की जो बहुत दिनों से यह धारणा हो रही थी कि हिन्दू तअस्सुब के पुतले हैं, वह एकदम दूर हो गयी। वह भाषण ऐसा ज्ञान-गर्भ और अर्थ-भरा है कि उसका खुलासा करना असम्भव है, पर उसका निचोड़ यह है—

'हिन्दू-धर्म का आधार किसी विशेष सिद्धान्त को मानना या कुछ विशेष विधि-विधानों का पालन करना नहीं है। हिन्दू का हृदय शब्दों और सिद्धान्तों से तृप्ति-लाभ नहीं कर सकता। अगर कोई ऐसा लोक है जो हमारी स्थूल दृष्टि के अगोचर है, तो हिन्दू उस दुनिया की सैर करना चाहता है, अगर कोई ऐसी सत्ता है जो भौतिक नहीं है, कोई ऐसी सत्ता है जो न्याय-रूप, दया-रूप और सर्वशक्तिमान है, तो हिन्दू उसे अपनी अन्तर्दृष्टि से देखना चाहता है। उसके संशय तभी छिन्न होते हैं जब वह इन्हें देख लेता है।'

आपने पाश्चात्यों को पहली बार सुनाया कि विज्ञान के वह सिद्धान्त जिनका उनको गर्व है और जिनका धर्म से सम्बन्ध नहीं, हिन्दुओं को अति प्राचीन काल से विदित थे और हिन्दू धर्म की नींव उन्हीं पर खड़ी है। और जहाँ अन्य धर्मों का आधार कोई विशेष व्यक्ति या उसके उपदेश हैं, हिन्दू धर्म का आधार शाश्वत सनातन सिद्धान्त हैं। और यह इस बात का प्रमाण है कि वह कभी न कभी विश्व-धर्म बनेगा। कर्म को केवल कर्तव्य समझ कर करना, उसमें फल या सुख-दुःख की भावना न रखना ऐसी बात थी, जिससे पश्चिम वाले अब तक सर्वथा अपरिचित थे। स्वामी जी के ओजस्वी भाषणों और सच्चाई भरे उपदेशों से लोग इतने प्रभावित हुए कि अमरीका के अखबार बड़ी श्रद्धा और सम्मान के शब्दों में स्वामी जी की बड़ाई छापने लगे। उनकी वाणी में वह दिव्य प्रभाव था कि सुनने वाले आत्म-विस्मृत हो जाते।

भक्तों को संख्या दिन-दिन बढ़ने लगी। चारों ओर से जिज्ञासु जन उनके पास पहुँचते और अपने-अपने नगर में पधारने का अनुरोध करते। स्वामी जी को अक्सर दिन-दिन भर दौड़ना पड़ता। बड़े-बड़े प्रोफेसरों और विद्वानों ने आकर उनके चरण छुए और उनके उपदेशों को अपने हृदय में स्थान दिया।

स्वामी जी अमरीका में करीब ३ साल तक रहे और इस बीच श्रम और शरीर कष्ट की तनिक भी परवाह न कर अपने गुरुदेव के आदेश के अनुसार वेदान्त का प्रचार करते रहे। इसके बाद आपने इंगलैण्ड की यात्रा की। आपकी ख्याति वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थी। अंग्रेजों को, जो नास्तिकता और जड़-पूजा में दुनिया में सबसे आगे बड़े हुए हैं, आकृष्ट करने में पहले आपको बहुत कष्ट करना पड़ा, पर आपका अद्भुत अध्यवसाय और प्रबल संकल्प शक्ति अन्त में इन सब बाधाओं पर विजयी हुई, और आपकी वक्तृताओं का जादू अंग्रेजों पर भी चल गया। ऐसे-ऐसे वैज्ञानिक, जिन्हें खाने के लिए भी प्रयोगशाला के बाहर निकलना कठिन था आपका भाषण सुनने के लिए घण्टों पहले सभा में पहुँच जाते और प्रतीक्षा में बैठे रहते। आपने वहाँ तीन बड़े मारके के भाषण किये और आपकी वाग्मिता तथा विद्वत्ता का सिक्का सबके दिलों पर बैठ गया। सब पर प्रकट हो गया कि जड़वाद में यूरोप चाहे भारत से कितना ही आगे क्यों न हो, पर अध्यात्म और ब्रह्म-ज्ञान का मैदान हिन्दुस्तानियों का ही है। आप करीब एक साल तक वहाँ रहे और अनेकानेक सभा-समितियों, कालिजों और क्लबघरों से आपके पास निमन्त्रण आते थे, पर वेदान्त के प्रचार का कोई भी अवसर आप हाथ से न जाने देते। आपकी ओजमयी वक्तृताओं का यह प्रभाव हुआ कि बिशपों और पादरियों ने गिरजों में वेदान्त पर भाषण किये।

एक दिन एक संभ्रान्त महिला के मकान पर लंदन के अध्यापकों की सभा होने वाली थी। श्रीमती जी शिक्षा-विषय पर बड़ा अधिकार रखती थीं। और उनका भाषण सुनने तथा उस पर बहस की इच्छा से बहुत से विद्वान एकत्र हुए थे। संयोगवश श्रीमती जी की तबियत कुछ खराब हो गयी। स्वामी जी वहाँ विद्यमान थे। लोगों ने प्रार्थना की कि आप ही कुछ फरमायें। स्वामी जी

उठ खड़े हुए और भारत की शिक्षा-प्रणाली पर पाण्डित्यपूर्ण भाषण किया। उन विद्या-व्यवसायियों को कितना आश्चर्य हुआ जब स्वामी जी के श्रीमुख से सुना कि भारत में विद्यादान सब दानों से श्रेष्ठ माना गया है और भारतीय गुरु अपने विद्यार्थियों से कुछ लेता नहीं; बल्कि उन्हें अपने घर पर रखता है और उनको विद्यादान के साथ-साथ भोजन-वस्त्र भी देता है।

धीरे-धीरे यहाँ भी स्वामी जी की भक्त-मण्डली काफी बड़ी हो गयी। बहुत से लोग, जो अपनी रुचि का आध्यात्मिक भोजन न पाकर धर्म से विरक्त हो रहे थे, वेदान्त पर लट्टू हो गये, और स्वामी जी में उनकी इतनी श्रद्धा हो गयी कि यहाँ से जब वह चले तो उनके साथ कई अंग्रेज शिष्य थे, जिनमें कुमारी नोवल भी थीं, जो बाद को भगिनी निवेदिता के नाम से प्रसिद्ध हुईं। स्वामी जी ने अंग्रेजों के रहन-सहन और चरित्र-स्वभाव को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा-समझा। इस अनुभव की चर्चा करते हुए एक भाषण में आपने कहा कि यह क्षत्रियों और वीर पुरुषों की जाति है।

१६ सितम्बर १८९६ ई० को स्वामी जी कई अंग्रेजी चेलों के साथ प्रिय स्वदेश को रवाना हुए। भारत के छोटे-बड़े सब लोग आपकी उज्ज्वल विरुदावली को सुन-सुन कर आपके दर्शन के लिए उत्कंठित हो रहे थे। आपके स्वागत और अभ्यर्थना के लिए नगर-नगर में कमेटियाँ बनने लगीं। स्वामी जी जब जहाज से कोलम्बो में उतरे तो जनसाधारण ने जिस उत्साह और उल्लास से आपका स्वागत किया, वह एक दर्शनीय दृश्य था। कोलम्बो से अल्मोड़ा तक जिस-जिस नगर में आप पधारे, लोगों ने आपकी राह में आँखें बिछा दीं। अमीर-गरीब, छोटे-बड़े सबके हृदय में आपके लिए एक-सा आदर-सम्मान था। यूरोप में बड़े विजेताओं की जो अभ्यर्थना हो सकती है, उससे कई गुना अधिक भारत में स्वामी जी की हुई। आपके दर्शन के लिए लाखों की भीड़ जमा हो जाती थी, और लोग आपको एक नजर देखने के लिए मंज़िलें तै करके आते थे। क्योंकि भारतवर्ष लाख गया-बीता है, फिर भी एक सच्चे सन्त और महात्मा का जैसा कुछ आदर-सम्मान भारतवासी कर सकते हैं और किसी देश में संभव

नहीं। यहाँ मन को जीतने और हृदयों को वश में करने वाले विजेता का देश को जीतने और मानव प्राणियों का रक्त बहाने वाले विजेता से कहीं अधिक आदर-सम्मान होता है।

हर शहर में जनसाधारण की ओर से आपके कार्यों की बड़ाई और कृतज्ञता-प्रकाश करने वाले मानपत्र दिये गये। कुछ बड़े शहरों में तो पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस मानपत्र तक दिये गये और आपने उनके उत्तर में देशवासियों को देश-भक्ति के उत्साह तथा अध्यात्म तत्व से भरी हुई वक्तृताएँ सुनायीं। मद्रास में आपके स्वागत के लिए १७ आलीशान फाटक बनाये गये। महाराजा रामानन्द ने, जिनकी सहायता से स्वामी जी अमरीका गये थे, इस समय बड़े उत्साह और उदारता के साथ आपके स्वागत का आयोजन किया। मद्रास के विभिन्न स्थानों में घूमते और अपने अमृत उपदेशों से लोगों को तृप्त, आह्लादित करते हुए २८ फरवरी को स्वामी जी कलकत्ते पधारे। यहाँ आपके स्वागत-अभिनंदन के लिए लोग पहले ही से अधीर हो रहे थे। जिस समय आपको मानपत्र दिया गया, सभा में ५ हजार से अधिक लोग उपस्थित थे। राजा विनयकृष्ण बहादुर ने स्वयं मानपत्र पढ़ा, जिसमें स्वामी जी के भारत का गौरव बढ़ाने वाले कार्यों का बखान किया गया था।

कलकत्ता में स्वामी जी ने एक अति पाण्डित्य-पूर्ण भाषण किया। पर अध्यापन और उपदेश में अत्यधिक श्रम करने के कारण आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया और जलवायु-परिवर्तन के लिए आपको दार्जिलिंग जाना पड़ा। वहाँ से अल्मोड़ा गये। पर स्वामी जी ने तो वेदान्त के प्रचार का व्रत ले रखा था, उनको बेकारी में कब चैन आ सकता था। ज्यों ही तबियत जरा सँभली स्यालकोट पधारे और वहाँ से लाहौर वालों की भक्ति ने अपने यहाँ खींच बुलाया। इन दोनों स्थानों में आपका बड़े उत्साह से स्वागत-सत्कार हुआ और आपने अपनी अमृतवाणी से श्रोताओं के अन्तःकरणों में ज्ञान की ज्योति जगा दी। लाहौर से आप काश्मीर गये और वहाँ से राजपूताने का भ्रमण करते हुए कलकत्ता लौट आये। इस बीच आपने दो मठ स्थापित कर दिये थे। इसके कुछ

दिन बाद रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, जिसका उद्देश्य लोक-सेवा है और जिसकी शाखाएँ भारत के हर भाग में विद्यमान हैं तथा जनता का अमित उपकार कर रही हैं ।

१८९७ ई० का साल सारे हिन्दुस्तान के लिए बड़ा मनहूस था । कितने ही स्थानों में प्लेग का प्रकोप था और अकाल भी पड़ रहा था । लोग भूख और रोग से काल का ग्रास बनने लगे । देशवासियों को इस विपत्ति में देख कर स्वामी जी कैसे चुप बैठ सकते थे । आपने लाहौर वाले भाषण में कहा था—

'साधारण मनुष्य का धर्म यही है कि साधु-संन्यासियों और दीन-दुखियों को भरपेट भोजन कराये । मनुष्य का हृदय ईश्वर का सबसे बड़ा मन्दिर है, और इसी मन्दिर में उसकी आराधना करनी होगी ।'

फलतः आपने बड़ी सरगर्मी से खैरातखाने खोलना आरम्भ किया । स्वामी रामकृष्ण ने देश-सेवा-व्रती संन्यासियों की एक छोटी-सी मंडली बना दी थी । यह सब स्वामी जी के निरीक्षण में तन-मन से दीन-दुखियों की सेवा में लग गये । मुर्शिदाबाद, ढाका, कलकत्ता, मद्रास आदि में सेवाश्रम खोले गये । वेदान्त के प्रचार के लिए जगह-जगह विद्यालय भी स्थापित किये गये । कई अनाथालय भी खुले । और यह सब स्वामी जी के सदुद्योग का सुफल था । उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ रहा था, फिर भी वह स्वयं घर-घर घूमते और पीड़ितों को आश्वासन तथा आवश्यक सहायता देते-दिलाते । प्लेग-पीड़ितों की सहायता करना, जिनसे डाक्टर लोग भी भागते थे, कुछ इन्हीं देश-भक्तों का काम था ।

उधर इंग्लैण्ड और अमरीका में भी वह पौधा बढ़ रहा था, जिसका बीज स्वामी जी ने बोया था । दो संन्यासी अमरीका में और एक इंग्लैण्ड में वेदान्त-प्रचार में लगे हुए थे, और प्रेमियों की संख्या दिन-दिन बढ़ती जाती थी ।

स्वामी जी का स्वास्थ्य जब बहुत अधिक बिगड़ गया तो आपने लाचार हो इंग्लैण्ड की दूसरी यात्रा की और वहाँ कुछ दिन ठहर कर अमरीका चले गये । वहाँ आपका बड़े उत्साह से स्वागत हुआ । दो बरस पहले जिन लोगों ने आपके श्रीमुख से वेदान्त-दर्शन पर जोरदार वक्तृताएँ सुनी थीं, वह अब पक्के

वेदान्ती हो गये थे। स्वामी जी के दर्शन से उनके हर्ष की सीमा न रही। यहाँ की जलवायु स्वामी जी के लिए लाभजनक सिद्ध हुई और कठिन श्रम करते रहने पर भी कुछ दिन में आप फिर स्वस्थ हो गये। धीरे-धीरे हिन्दू-दर्शन के प्रेमियों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि स्वामी जी दिन-रात श्रम करके भी उनकी पिपासा तृप्त न कर सकते थे। अमरीका जैसे व्यापारी देश में एक हिन्दू संन्यासी का भाषण सुनने के लिए दो-दो हजार आदमियों का जमा हो जाना कोई साधारण बात नहीं है। अकेले सानफ्रांसिस्को नगर में आपने हिन्दू दर्शन पर पूरे पचास व्याख्यान दिये। श्रोताओं की संख्या दिन-दिन बढ़ती गयी और अध्यात्म तत्व के प्रेमियों की तृप्ति केवल दार्शनिक व्याख्यान सुनने से न होती थी। साधना और योगाभ्यास की आकांक्षा भी उनके हृदयों में जगी। स्वामी जी ने उनकी सहायता से सानफ्रांसिस्को में 'वेदान्त सोसायटी' और शान्ति-आश्रम स्थापित किया और दोनों पौधे आज तक हरे-भरे हैं। शांति-आश्रम नगर के कोलाहल से दूर एक परम रमणीक स्थान पर स्थित है और उसका घेरा लगभग २०० एकड़ है। यह आश्रम एक उदार धर्मानुरागिनी महिला की वेदान्यता का स्मारक है।

स्वामी जी न्यूयार्क में थे कि पेरिस में विभिन्न धर्मों का सम्मेलन करने की आयोजना हुई, और आपको भी निमन्त्रण मिला। उस समय तक आपने फ्रांसीसी भाषा में कभी भाषण न किया था। यह निमन्त्रण पाते ही उसके अभ्यास में जुट गये। और आत्मबल से दो महीने में ही उस पर इतना अधिकार प्राप्त कर लिया कि देखने वाले दंग हो जाते। पेरिस में आपने हिन्दू-दर्शन पर दो व्याख्यान दिये, पर चूंकि यह केवल निबंध पढ़ने वालों का सम्मेलन था, और उसका उद्देश्य सत्य की खोज नहीं, अपितु पेरिस की प्रदर्शनी की शोभा बढ़ाना था, इसलिए फ्रांस में स्वामी जी को सफलता न हुई।

अन्त में अत्यधिक श्रम के कारण स्वामी जी का शरीर बिल्कुल गिर गया। यों ही बहुत कमजोर हो रहे थे, पेरिस-सम्मेलन की तैयारी ने और भी कमजोर बना दिया। अमरीका, इंग्लैण्ड और फ्रांस की यात्रा करते हुए जब

आप स्वदेश लौटे तो देह में हड्डियां भर रह गयी थीं और इतनी शक्ति न थी कि सार्वजनिक सभाओं में भाषण कर सकें। डाक्टरों की कड़ी ताकीद थी कि आप कम-से-कम दो साल तक पूर्ण विश्राम करें। पर जो हृदय अपने देश-वासियों के दुःख देख कर गला जाता हो, और जिसमें उनकी भलाई की धुन समायी हो, जिसमें यह लालसा हो कि आज की धन और बल से हीन हिन्दू जाति फिर पूर्वकाल की सबल, समृद्धि और आत्मशालिनी आर्य जाति बने, उससे यह कब हो सकता था कि एक क्षण के लिए भी आराम कर सके। कलकत्ते पहुँचते ही, कुछ ही दिन के बाद आप आसाम की ओर रवाना हुए और अनेक सभाओं में वेदान्त का प्रचार किया। कुछ तो स्वास्थ्य पहले से ही बिगड़ा हुआ था। कुछ उधर की जलवायु भी प्रतिकूल सिद्ध हुई। आप फिर कलकत्ते लौटे। दो महीने तक हालत बहुत नाजुक रही। फिर बिल्कुल तन्दुरुस्त हो गये।

इन दिनों आप अक्सर कहा करते थे कि अब दुनिया में मेरा काम पूरा हो चुका। पर चूँकि उस काम को जारी रखने के लिए जितेन्द्रिय, निःस्वार्थ और आत्मबल-सम्पन्न संन्यासियों की अत्यन्त आवश्यकता थी, इसलिए अपने बहुमूल्य जीवन के शेष मास आपने अपनी शिष्य-मंडली की शिक्षा और उपदेश में लगाये। आपका कथन था कि शिक्षा का उद्देश्य पुस्तक पढ़ाना नहीं है, बल्कि मनुष्य को मनुष्य बनाना है। इन दिनों आप अक्सर समाधि की अवस्था में रहा करते थे और अपने भक्तों से कहा करते थे कि अब मेरे महाप्रस्थान का समय बहुत समीप है। जुलाई १९०२ को यकायक आप समाधिस्थ हो गये। इस समय आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। सबेरे दो घण्टे समाधि में रहे थे, दोपहर को शिष्यों को पाणिनीय व्याकरण पढ़ाया था। और तीसरे पहर दो घण्टे तक वेदोपदेश करते रहे। इसके बाद टहलने को निकले। शाम को लौटे तो थोड़ी देर माला जपने के बाद फिर समाधिस्थ हो गये और इसी रात को पंचभौतिक शरीर को त्याग कर परमधाम को सिधार गये। यह दुर्बल पार्थिव देह आत्म-साक्षात्कार की दिव्यानुभूति को न सह सकी। पहले लोगों ने इस अवस्था को समाधिमात्र समझा और एक संन्यासी ने आपके कान में परमहंस जी का नाम

सुनाया; पर जब इसका कुछ असर न हुआ तब लोगों को विश्वास हो गया कि आप ब्रह्मलीन हो गये। आपके चेहरे पर तेज था और अधखुली आँखें आत्म-ज्योति से प्रकाशित थीं। इस हृदय-विदारक समाचार को सुनते ही सारे देश में कोलाहल मच गया और दूर-दूर से लोग आपके अन्तिम दर्शन के लिए कलकत्ते पहुँचे। अन्त में दूसरे दिन दो बजे के समय गंगा-तट पर आपकी दाह-क्रिया हुई। परमहंस जी की भविष्य-वाणी थी कि मेरे इस शिष्य के जीवन का उद्देश्य जब पूरा हो जायेगा तब वह भरी जवानी में इस दुनिया से चल देगा। वह अक्षरशः सत्य निकली।

स्वामी जी का रूप बड़ा सुन्दर और भव्य था। शरीर सबल और सुदृढ़ था। वजन दो मन से ऊपर था। दृष्टि में बिजली का असर था और मुख-मण्डल पर आत्मतेज का आलोक। आपकी दयालुता की चर्चा ऊपर कर चुके हैं। कड़ी बात शायद जबान से एक बार भी न निकली हो। विश्वविख्यात और विश्ववन्ध होते हुए भी स्वभाव अति सरल और व्यवहार अति विनम्र था। उनका पाण्डित्य अगाध, असीम था। अंग्रेजी के पूर्ण पण्डित और अपने समय के सर्वश्रेष्ठ वक्ता थे। संस्कृत-साहित्य और दर्शन के पारगामी विद्वान् और जर्मन, हिब्रू, ग्रीक, फ्रेंच आदि भाषाओं पर पूर्ण अधिकार रखते। कठोर श्रम तो आपका स्वभाव ही था। केवल चार घण्टे सोते थे। चार बजे तड़के उठ कर जप-ध्यान में लग जाते। प्राकृतिक दृश्यों के बड़े प्रेमी थे। भोर में जप-तप से निवृत्त होकर मैदान में निकल जाते और प्रकृति-सुषमा का आनन्द लेते। पालतू पशुओं को प्यार करते और उनके साथ खेलते। अपने गुरुदेव की अन्त समय तक पूजा करते रहे। स्वर में बड़ा माधुर्य और प्रभाव था। श्रीरामकृष्ण परमहंस कभी-कभी आपसे भजन गाने की फरमाइश किया करते थे और उससे इतने प्रभावित होते कि आत्मविस्मृत-से हो जाते। मीराबाई और तानसेन के प्रेम-भरे गीत आपको बहुत प्रिय थे। वाणी में वह प्रभाव था कि वक्तृताएँ श्रोताओं के हृदयों पर पत्थर की लकीर बन जातीं। कहने का ढंग और भाषा बहुत सरल होती थी; पर उन सीधे-सादे शब्दों में कुछ ऐसा आध्यात्मिक भाव भरा होता था कि

सुनने वाले तल्लीन हो जाते थे। आप सच्चे देशभक्त थे, राष्ट्र पर अपने को उत्सर्ग कर देने की बात आपसे अधिक शायद ही और किसी के लिए सही हो सकती हो। देश-भक्ति का ही उत्साह आपको अमरीका ले गया था। अपने विपद्-ग्रस्त राष्ट्र और अपने प्राचीन साहित्य तथा दर्शन का गौरव दूसरे राष्ट्रों की दृष्टि में स्थापित करना, ब्रह्मचारियों को शिक्षा देना, अपने पीड़ित देशवासियों के लिए जगह-जगह खैरातखाने खुलवाना—यह सब आपके सच्चे देश-प्रेम के स्मारक हैं। आप केवल महर्षि ही न थे, ऐसे देशभक्त भी थे, जिसने देश पर अपने आपको मिटा दिया हो। एक भाषण में फरमाते हैं—

> 'मेरे नौजवान दोस्तो! बलवान बनो। तुम्हारे लिए मेरी यही सलाह है। तुम भगवद्गीता के स्वाध्याय की अपेक्षा फुटबाल खेल कर कहीं अधिक सुगमता से मुक्ति प्राप्त कर सकते हो। जब तुम्हारी रगें और पुट्ठे अधिक दृढ़ होंगे तो तुम भगवद्गीता के उपदेशों पर अधिक अच्छी तरह चल सकते हो। गीता का उपदेश कायरों को नहीं दिया गया था, किन्तु अर्जुन को दिया गया था जो बड़ा शूरवीर, पराक्रमी और क्षत्रिय-शिरोमणि था। कृष्ण भगवान् के उपदेश और अलौकिक शक्ति को तुम भी समझ सकोगे, जब तुम्हारी रगों में खून कुछ और तेजी से दौड़ेगा।'
>
> एक दूसरे व्याख्यान में उपदेश देते हैं—
>
> 'यह समय आनन्द में आँसू बहाने का नहीं। हम रो तो बहुत चुके। अब हमारे लिए नरक बनाने की आवश्यकता नहीं। इस कोमलता ने हमें इस हद तक पहुँचा दिया है कि हम रुई का गाला बन गये हैं। अब हमारे देश और जाति को जिन चीजों की जरूरत है, वह है—लोहे के हाथ-पैर और फौलाद के सारे पुट्ठे और दृढ़ संकल्प शक्ति, जिसे दुनिया की कोई वस्तु रोक नहीं सकती, जो प्रकृति में रहस्यों की हद तक पहुँच जाती है और अपने लक्ष्य से कभी विमुख नहीं होती, चाहे समुद्र की तह में जाना या मृत्यु का सामना क्यों न करना पड़े। महत्ता का मूल मन्त्र विश्वास है—दृढ़ और अटल विश्वास, अपने आप और सर्व-शक्तिमान

जगदीश्वर पर विश्वास ।'

स्वामी जी को अपने ऊपर जबरदस्त विश्वास था। स्वयं उन्हीं का कथन है—

> 'गुरुदेव के गले में एकाएक फोड़ा निकल आया था। धीरे-धीरे उसने इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि कलकत्ते के सुप्रसिद्ध डाक्टर बाबू महेन्द्रलाल सरकार बुलाये गये। उन्होंने परमहंस जी की हालत देख कर निराशा जतायी और चलते समय शिष्यों से कहा कि यह रोग संक्रामक है, इसलिए इससे बचते रहो और गुरुजी के पास बहुत देर तक न ठहरा करो। यह सुन कर शिष्यों के होश उड़ गये और आपस में कानाफूसी होने लगी। मैं उस समय कहीं गया हुआ था। लौटा तो अपने गुरुभाइयों को अति भयभीत पाया। कारण मालूम होते ही मैं सीधे गुरुदेव के कमरे में चला गया। वह प्याली जिसमें उनके गले से निकाला हुआ मवाद रखा हुआ था, उठा ली, और सब शिष्यों के सामने बड़े इतमीनान से पी गया और बोला, 'देखो, मृत्यु क्योंकर मेरे पास आती है ?'

स्वामी जी सामाजिक सुधारों के पक्के समर्थक थे, पर उसकी वर्तमान गति से सहमत न थे। उस समय समाज-सुधार के जो यत्न किये जाते थे, वह प्रायः उच्च और शिक्षित वर्ग से ही सम्बन्ध रखते थे। परदे की रस्म, विधवा-विवाह, जाति-बन्धन—यही इस समय की सबसे बड़ी सामाजिक समस्याएँ हैं, जिनमें सुधार होना अत्यावश्यक है, और सभी शिक्षित वर्ग से सम्बन्ध रखती हैं। स्वामी जी का आदर्श बहुत ऊँचा था—अर्थात् निम्न श्रेणी वालों को ऊपर उठाना, उन्हें शिक्षा देना और अपनाना। यह लोग हिन्दू जाति की जड़ हैं और शिक्षित-वर्ग उनकी शाखाएँ ! केवल डालियों को सींचने से पेड़ पुष्ट नहीं हो सकता। उसे हरा-भरा बनाना हो तो जड़ को सींचना होगा। इसके सिवा इस विषय में आप कठोर शब्दों के व्यवहार को अति अनुचित समझते थे, जिनका फल केवल यही होता है कि जिनका सुधार करना है, वही लोग चिढ़कर ईंट का जवाब पत्थर से देने को तैयार हो जाते हैं। और सुधार का मतलब केवल यही

रह जाता है कि निरर्थक विवादों और दिल दुखाने वाली आलोचनाओं से पन्ने-के-पन्ने काले किये जायँ। इसी से तो समाज-सुधार का यत्न आरम्भ हुए सौ साल से ऊपर हो चुका और अभी तक कोई नतीजा न निकला।

स्वामी जी ने सुधारक के लिए तीन शर्तें रखी हैं। पहली यह कि देश और जाति का प्रेम उसका स्वभाव बन गया हो, हृदय उदार हो और देशवासियों की भलाई की सच्ची इच्छा उसमें बसती हो। दूसरी यह कि अपने प्रस्तावित सुधारों पर उसको दृढ़ विश्वास हो। तीसरी यह कि वह स्थिरचित्त और दृढ़निश्चय हो। सुधार के परदे में अपना कोई काम बनाने की दृष्टि न रखता हो और अपने सिद्धान्तों के लिए बड़े-से-बड़ा कष्ट और हानि उठाने को तैयार हो, यहाँ तक कि मृत्यु का भय भी उसे संकल्प से न डिगा सके। कहते थे कि ये तीनों योग्यताएँ जब तक हममें पूर्ण मात्रा में उत्पन्न न हो जायँ, तब तक समाज-सुधार के लिए हमारा यत्न करना बिल्कुल बेकार है; पर हमारे सुधारकों में कितने हैं जिनमें ये योग्यताएँ विद्यमान हों। फरमाते हैं—

> 'क्या भारत में कभी सुधारकों की कमी रही है? क्या तुम कभी भारत का इतिहास पढ़ते हो? रामानुज कौन थे? शंकर कौन थे? नानक कौन थे? चैतन्य कौन थे? दादू कौन थे? क्या रामानुज नीची जातियों की ओर से लापरवाह थे? क्या वह आजीवन इस बात का यत्न नहीं करते रहे कि चमारों को भी अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित कर लें? क्या उन्होंने मुसलमानों को अपनी मण्डली में मिलाने की कोशिश नहीं की थी? क्या गुरु नानक ने हिन्दू-मुसलमान दोनों जातियों को मिला कर एक बनाना नहीं चाहा था? इन सब महापुरुषों ने सुधार के लिए यत्न किये, और उनका नाम अभी तक कायम है। अन्तर इतना है कि वह लोग कटुवादी न थे। उनके मुँह से जब निकलते थे, मीठे वचन ही निकलते थे। वह कभी किसी को गाली नहीं देते थे, किसी की निन्दा नहीं करते थे। निःसन्देह सामाजिक जीवन के सुधार के इन गुरुतर और महत्वपूर्ण प्रश्नों की हमने उपेक्षा की है और प्राचीनों ने जो मार्ग स्वीकार

किया था, उससे विमुख हो गये हैं।'

सामाजिक सुधार के समस्त प्रचलित प्रश्नों में से स्वामी जी केवल एक के विषय में सुधारकों से सहमत थे। बाल विवाह और जनसाधारण की गृहस्थ-जीवन की अत्यधिक प्रवृत्ति को वह घृणा की दृष्टि से देखते थे। अतः रामकृष्ण मिशन की ओर से जो विद्यालय स्थापित किये गये, उनमें पढ़ने वालों के मां-बाप को यह शर्त भी स्वीकार करनी पड़ती है कि बेटे का ब्याह १८ साल के पहले न करेंगे। वह ब्रह्मचर्य के जबरदस्त समर्थक थे और भारतवर्ष की वर्तमान भीरुता और पतन को ब्रह्मचर्य-नाश का ही परिणाम समझते थे। आजकल के हिन्दुओं के बारे में अक्सर वह तिरस्कार के स्वर में कहा करते थे कि यहाँ भिखमंगा भी यह आकांक्षा रखता है कि ब्याह कर लूँ और देश में दस-बारह गुलाम और पैदा कर दूं।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के आप कट्टर विरोधी थे। आपका मत था कि शिक्षा उस जानकारी का नाम नहीं है जो हमारे दिमाग में ठूँस दी जाती है; किन्तु शिक्षा का प्रधान उद्देश्य मनुष्य के चरित्र का उत्कर्ष, आचरण का सुधार और पुरुषार्थ तथा मनोबल का विकास है....'अतः हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हमारी सब प्रकार की लौकिक शिक्षा का प्रबन्ध हमारे हाथ में हो, और उसका संचालन यथासंभव हमारी प्राचीन रीति-नीति और प्राचीन प्रणाली पर किया जाय।'

स्वामी जी की शिक्षा-योजना बहुत विस्तृत थी। एक हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करने का भी आपका विचार था, पर अनेक बाधाओं के कारण आप उसे कार्यान्वित न कर सके। हाँ, उसका सूत्रपात अवश्य कर गये।

धर्मगत रागद्वेष का तो आपके स्वभाव में कहीं लेश भी न था। दूसरे धर्मों की निन्दा और अपमान को बहुत अनुचित मानते थे। ईसाई धर्म, इस्लाम, बौद्ध-धर्म सबको समान दृष्टि से देखते थे। एक भाषण में हजरत ईसा को ईश्वर का अवतार माना था। अपने देशवासियों को सदा इसकी याद दिलाते रहते थे कि आत्म-विश्वास ही महत्व का मूलमन्त्र है। हमें अपने ऊपर बिल्कुल भरोसा नहीं।

अपने को छोटा और नीचा समझते हैं, इसी कारण दीन-हीन बने हुए हैं। हर अंग्रेज समझता है कि मैं शूरवीर हूँ, साहसी हूँ और जो चाहूँ, कर सकता हूँ। हम हिन्दुस्तानी अपनी असमर्थता के इस हद तक कायल हैं कि मर्दानगी का ख्याल भी हमारे दिलों में नहीं पैदा होता है। जब कोई कहता है कि तुम्हारे पुरखे निर्बुद्धि थे, वह गलत रास्ते पर चले और इसी कारण तुम इस अवस्था को पहुँचे तो हमको जितनी लज्जा होती है, उसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता, और हमारी हिम्मत और भी टूट जाती है।

स्वामी जी इस तत्व को खूब समझते थे और किसी दूषित प्रथा के लिए अपने पूर्व-पुरुषों को कभी दोष नहीं देते थे। कहते थे कि हरएक प्रथा अपने समय में उपयोगी थी और आज उसकी निन्दा करना निरर्थक है। आज हम इस बात पर जोर दे रहे हैं कि साधु-समुदाय के अस्तित्व से हमारे देश को कोई लाभ नहीं, और हमारी दानधारा को उधर से हट कर शिक्षा-संस्थाओं और समाज-सुधार के कार्यों की ओर बहना चाहिए। स्वामी जी इसे स्वार्थपरता मानते थे। और है भी ऐसा ही। साधु कितना ही अपढ़ हो, अपने धर्म और शास्त्रों से कितना ही अनभिज्ञ हो, फिर भी हमारे अशिक्षित देहाती भाइयों की ज्ञान-पिपासा की तृप्ति और मनःसमाधान के लिए उसके पास काफी विद्या-ज्ञान होता है। उसकी मोटी-मोटी धर्म-सम्बन्धी बातें कितने ही दिलों में जगह पातीं और कितनों के लिए कल्याण का साधन बनती हैं। अब अगर इनकी आवश्यकता नहीं समझी जाती तो कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए जिसमें उनका काम जारी रहे। पर हम इस दिशा में तो तनिक भी नहीं सोचते और जो रहा-सहा साधन है, उसे भी तोड़-फोड़ कर बराबर किया चाहते हैं।

सारांश, स्वामी जी अपनी जाति को आचार-व्यवहार, रीति-नीति, साहित्य और दर्शन, सामाजिक जीवन, उनके पूर्व काल के महापुरुष और पुनीत भारतभूमि सबको श्रद्धेय और सम्मान्य मानते थे। आपके एक भाषण का निम्नलिखित अंश सोने के अक्षरों में लिखा जाने योग्य है—

'प्यारे देशवासियो! पुनीत आर्यावर्त के बसने वालो! क्या तुम अपनी

इस तिरस्करणीय भीरुता से वह स्वाधीनता प्राप्त कर सकोगे जो केवल वीर-पुरुषों का अधिकार है ? हे भारतवासी भाइयो ! अच्छी तरह याद रखो कि सीता, सावित्री और दमयन्ती तुम्हारी जाति की देवियाँ हैं। हे वीर पुरुषो ! मर्द बनो और ललकार कर कहो, मैं भारतीय हूँ। मैं भारत का रहने वाला हूँ। हर एक भारतवासी चाहे वह कोई भी हो, मेरा भाई है। अपढ़ भारतीय, निर्धन भारतीय, ऊँची जाति का भारतीय, नीची जाति का भारतीय सब मेरे भाई हैं। भारतीय मेरा भाई है। भारत मेरा जीवन, मेरा प्राण है। भारत के देवता मेरा भरण-पोषण करते हैं। भारत मेरे बचपन का हिंडोला, मेरे यौवन का विलास-भवन और बुढ़ापे का बैकुण्ठ है। हे शंकर ! हे धरती माता ! मुझे मर्द बना। मेरी दुर्बलता दूर कर, और मेरी भीरुता का नाश कर !'

स्वामी जी के उपदेशों का सार यह है कि हम स्वजाति और स्वदेश के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करें, आत्मबल प्राप्त करें, बलवान् और वीर बनें। नीची जातियों को उभारें और उन्हें अपना भाई समझें। जब तक ९० प्रतिशत भारतवासी अपने को दीन-हीन समझते रहेंगे, भारत में एका और मेल का होना सर्वथा असम्भव है। हम धर्म में आस्था रखें, पर संन्यासी-विरागी न बनें। हाँ, हम अपने एका के लिए सब प्रकार के त्याग करने को तैयार रहें। हम एक पैसा कमायें, पर उसे अपने सुख-विलास में खर्च न करें, राष्ट्रहित में लगा दें। हिन्दू तत्वज्ञान के कर्म सम्बन्धी अंग का अनुसरण करें। शम, दम, तप और त्याग उन लोगों के लिए छोड़ दें, जिन्हें भगवान् ने इस उच्च पद पर पहुँचने की क्षमता प्रदान की है। स्वामी जी की शिक्षा का आधार प्रेम और शक्ति है। निर्भीकता उसका प्राण है और आत्म-विश्वास उसका धर्म है। उनकी शिक्षा में दुर्बलता और अनुनय-विनय के लिए तनिक भी स्थान नहीं था। उनका वेदान्त मनुष्य को सांसारिक दुःख-क्लेश से बचाने, जीवन-संग्राम में वीर की भाँति जुटने और मानसिक-आध्यात्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति की समान रूप से शिक्षा देता है। □ □

सरस्वती प्रेस